अध्याय-1

अर्थव्यवस्था का अध्ययन (अन्वीक्षण)

अर्थव्यवस्था की परिभाषा

यह समझना कोई कठिन बात नहीं है कि एक ही देश का अलग-अलग उद्देश्यों के लिए अलग-अलग ढंग से वर्णन किया जाता है। उदाहरण के लिए हमारा उद्देश्य एक देश के भौतिक पर्यावरण एवं स्थिति के सन्दर्भ में उस देश के लोगों एवं उनके क्रियाकलापों के बारे में चर्चा करना हो सकता है। ऐसी स्थिति में हमारा यह वर्णन एक भूगोल की पुस्तक का विषय बनेगा; किन्तु यदि हम लोगों के राजनैतिक जीवन और सरकार के विभिन्न रूपों के बारे में सोचते हैं तो इसे हम एक अलग ही दृष्टिकोण से देखेंगे- और यह वह दृष्टिकोण होगा जो नागरिक शास्त्र और राजनीति शास्त्र की पुस्तकों में पाया जाता है। इस पुस्तक में हम अपने देश को आर्थिक क्रियाओं के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करेंगे।

इस पुस्तक में आगे चलकर हम आर्थिक क्रियाओं के बारे में और अधिक विस्तार से बताएंगे। संक्षेप में, आर्थिक क्रियाएं मनुष्यों की वे क्रियाएं हैं जो यह निर्धारित करती हैं कि देश में किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाएगा, परिवहन, भण्डारण, विपणन, बैंकिंग और बीमा जैसी सेवाएं कैसे प्रदान की जाएंगी, और उत्पादित वस्तुओं में से कितने भाग का अभी उपयोग किया जाएगा और कितना भाग भविष्य के लिए बचा कर रखा जाएगा। आर्थिक क्रियाएं इस बात का भी निर्धारण करेंगी कि देश में उत्पादित वस्तुएं व सेवाएं कैसे और किन लोगों के बीच बांटी जाएंगी। हम देखेंगे कि आर्थिक क्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण केवल व्यक्तियों, फर्मों एवं निजी संस्थाओं द्वारा ही नहीं किया जाता बल्कि सरकार द्वारा भी किया जाता है। व्यक्ति एवं फर्में सामान्यतः निजी हित या लाभ के लिए काम करते हैं। सरकारें व्यक्तियों या समूहों के निजी हित को ही ध्यान में नहीं रखतीं बल्कि सब लोगों को मिलाकर-समाज के हित को भी ध्यान में रखती हैं।

जिस ढांचे के अन्तर्गत एक देश की समस्त आर्थिक क्रियाओं का वर्णन किया जा सकता है उसे ही अर्थव्यवस्था कहा जाता है। अतः सरल शब्दों में, अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूलतः इन आर्थिक क्रियाओं की प्रकृति को समझना ही हमारा उद्देश्य है।

अर्थव्यवस्था के प्रकार

अर्थव्यवस्थाओं के कई प्रकार हो सकते हैं। इनकी समस्याओं, इनके उद्देश्यों, इनकी सफलताओं और असफलताओं को समझने की दृष्टि से इन विभिन्न प्रकारों के बीच ठीक से अन्तर करना हमेशा उपयोगी रहता है। अन्तर का एक प्रकार जिसका बहुधा प्रयोग किया जाता है वह है पूंजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के बीच अन्तर करना अथवा इन दोनों प्रकारों और ''मिश्रित अर्थव्यवस्था'' - जिसका कि भारत एक उदाहरण है-के बीच अन्तर करना। एक दूसरा महत्त्वपूर्ण अन्तर जो अक्सर किया जाता है वह है विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के बीच अन्तर।

संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम (इंग्लैंड) पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के ही उदाहरण हैं। ये विकसित अर्थव्यवस्थाओं के भी उदाहरण हैं। सोवियत यूनियन और चीन ये दोनों ही समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं वाले देश हैं। किन्तु जहां सोवियत यूनियन एक विकसित अर्थव्यवस्था है वहाँ चीन भारत की तरह एक विकासशील अर्थव्यवस्था ही है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था

एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं हैं :

(अ) उत्पादन के प्रमुख क्षेत्रों में निजी उद्यम का पाया जाना और,

(ब) कीमत-यन्त्र का चलना जिसके माध्यम से क्रेता और विक्रेता इस बात का निर्धारण करते हैं कि बाज़ार में किन-किन वस्तुओं व सेवाओं को, कितनी-कितनी मात्राओं में और किन-किन कीमतों पर बेचा और खरीदा जाएगा।

"निजी उद्यम" से तात्पर्य उत्पादन की एक ऐसी प्रणाली से है जो "पूंजी" (पूंजी उत्पादन के लिए आवश्यक सब प्रकार की सम्पत्तियों के लिए एक सामान्य नाम है।) के निजी स्वामित्व पर आधारित होती है। पूंजी भूमि, कारखाने और मशीनें जैसी भौतिक परिसम्पत्तियों के रूप में भी हो सकती है अथवा यह मुद्रा और उन अन्य वित्तीय परिसम्पत्तियों के रूप में भी हो सकतीहै जो फर्मों और व्यवसायों के स्वामित्व एवं संचालन के लिए आवश्यक होती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन पर पूंजी के स्वामियों का ही नियन्त्रण होता है जो अपने निजी हित या लाभ के लिए काम करते हैं किन्तु आजकल लगभग सभी आधुनिक समाजों में उपभोगताओं की रक्षा करने, श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी को सुनिश्चित बनाने, तथा पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने जैसे कुछ विशेष सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने की दृष्टि से राज्य द्वारा निजी लाभ के उद्देश्य को नियन्त्रित किया जाता है और उसे एक सीमा के भीतर रखा जाता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता है-सार्वजनिक उद्यम का पाया जाना अथवा उत्पादन क्रियाओं के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में पूंजी पर राज्य का स्वामित्व। बाज़ार शक्तियों के स्वतन्त्र संचालन के स्थान पर समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं उत्पादन और वितरण के सरकारी नियोजन पर निर्भर करती हैं। किन्तु अब समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में भी जिसे क्रेताओं व विक्रेताओं की दृष्टि से लाभदायक माना जाता है उस आधार पर आर्थिक निर्णय लेने (दूसरे शब्दों में जिसे मांग और पूर्ति की बाज़ार शक्तियां कहा जाता है) के महत्त्व को अधिक तेज़ी से महसूस किया जा रहा है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था

कभी-कभी हमें एक ऐसी अर्थव्यवस्था भी देखने को मिल सकती है जिसमें कुछ महत्त्वपूर्ण उद्यमों, अर्थात् फर्मों व व्यवसायों पर समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं की तरह राज्य का स्वामित्व होता है। जबकि अन्य उद्यमों पर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तरह निजी स्वामित्व ही होता है। इसे हम एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदाहरण कह सकते हैं।

एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार अथवा राज्य के स्वामित्व वाले उद्यमों को मिलाकर अर्थव्यवस्था का सार्वजनिक क्षेत्र बनता है। इन उद्यमों को सार्वजनिक उद्यम कहा जाता है क्योंकि इन पर एक प्रकार से सामान्य जनता का ही स्वामित्व होता है। निजी क्षेत्र निजी हाथों के उन उद्यमों से मिलकर बनता है जिन पर या तो स्वामियों के रूप में अथवा कम्पनियों के अंशधारियों के रूप में व्यक्तियों का स्वामित्व होता है। भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का सर्वप्रमुख उदाहरण है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण उद्योग तथा प्रमुख्र बैंकिंग और वित्तीय संस्थाएं शामिल हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है क्योंकि

इसके अन्तर्गत भी कई महत्त्वपूर्ण उद्योग आते हैं। इसके अलावा, भारतीय कृषि लगभग पूरी तौर पर निजी क्षेत्र में ही और यह काम हमारे किसानों के निजी उद्यम द्वारा ही किया जाता है।

यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था के कई महत्त्वपूर्ण उद्योग निजी क्षेत्र में हैं और इन्हें लाभ कमाने के उद्देश्य से और व्यक्तिगत स्वामियों तथा अंशधारियों के हित में चलाया जाता है, तो भी इन्हें सामाजिक नियन्त्रण में रखा जा सकता है। भारत में सरकार विभिन्न कानूनी प्रावधानों के माध्यम से सार्वजनिक हित में निजी उद्यमों की कार्यप्रणाली को नियन्त्रित और निर्देशित कर सकती है।

सार्वजनिक स्वामित्व वाली संस्थाओं के अलावा, हमारी अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसी ही फर्में हैं जिन पर निजी अंशधारियों और सरकार अथवा सार्वजनिक निकायों का संयुक्त स्वामिव पाया जाता है। ये फर्में न तो पूर्णत: सार्वजनिक क्षेत्र में हैं और न ही निजी क्षेत्र में, अत: इन्हें अर्थव्यवस्था के ''संयुक्त क्षेत्र'' में माना जा सकता है।

भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था की मजेदार विशेषता यह है कि यहां हम यह देख सकते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ फर्में ठीक वैसी ही वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जिनका उत्पादन निजी क्षेत्र की कुछ फर्में भी कर रही होती हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय इस्पात उद्योग में सार्वजनिक क्षेत्र की फर्में (जैसे हिन्दुस्तान स्टील) और निजी उद्यम (जैसे टाटा स्टील) साथ-साथ पाए जाते हैं। इस प्रकार, कार्य कुशलता की दृष्टि से इन दोनों के बीच एक प्रकार की प्रतियोगिता का अवसर बना रहता है।

विकसित अर्थव्यवस्थाएं, कम विकसित देश, विकासशील अर्थव्यवस्थाएं

पश्चिम के वे देश जिनका पहले औद्योगीकरण हो चुका है, तथा जापान, कोरिया और एशिया के अन्य नए औद्योगिक देश विकसित अर्थव्यवस्था की श्रेणी में आते हैं। ये तुलनात्मक रूप से सम्पन्न देश हैं जिनमें एक आधुनिक औद्योगिक समाज की सामान्य विशेषताएं पाई जाती हैं। गरीब देशों में तुलनात्मक रूप से औद्योगिक क्षेत्र छोटा होता है। इन देशों में चाहे औद्योगिक क्षेत्र हो अथवा कृषि क्षेत्र, आधुनिक तकनोलॉजी के बारे में भी काफी कम जानकारी पाई जाती है। इन गरीब देशों को सामान्यतया कम विकसित देश के नाम से जाना जाता है इनमें से कुछ को विकासशील अर्थव्यवस्थाएं कहा जाना चाहिए क्योंकि चाहे इसके पास एक छोटा-सा ही आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र होता है किन्तु फिर भी ये औद्योगीकरण की एक विशिष्ट प्रक्रिया में से गुजर रहे होते हैं। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र यद्यपि छोटा होता है किन्तु उसका आकार लगातार विस्तृत होता रहता है और परम्परागत कृषि अथवा ग्रामीण क्षेत्र लगातार संकुचित होता जाता है। कुछ समय बाद हम भारत जैसी एक विकासशील अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का विस्तार से वर्णन करेंगे।

एक अर्थव्यवस्था में क्या चलता रहता है-कुछ प्रश्न

एक अर्थव्यवस्था में क्या हो रहा है, इसे जानने के लिए इस अर्थव्यवस्था में रहने वाले लोगों को आर्थिक जीवन के बारे में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर ढूंढने होते हैं। किन्तु तब यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कोई व्यक्ति लोगों के आर्थिक जीवन को किस प्रकार परिभाषित करता है ? हम इस व्यापक प्रश्न का उत्तर पहले कुछ अन्य प्रश्नों के बारे में चर्चा करके अप्रत्यक्ष रूप से दे सकते हैं। हमारी अर्थव्यवस्था और हमारे आर्थिक जीवन से सम्बन्धित जिन प्रश्नों को यहां हमने चर्चा के लिए चुना है, वे हैं :

1. अर्थव्यवस्था में कौन उत्पादक हैं ?
2. उत्पादक किसके लिए उत्पादन करता है ? अथवा उपभोक्ता कौन लोग हैं ?

3. उत्पादक इस बात का निर्णय कैसे करता है कि किन-किन वस्तुओं का कितनी-कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाना है ?

4. उत्पादक एक वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक विभिन्न साधनों (उत्पादक के कारकों) के उचित संयोग का चुनाव कैसे करता है ?

ये सभी चारों प्रश्न उन आर्थिक क्रियाओं के बारे में हैं जिन्हें उत्पादन और उपयोग कहा जाता है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में उत्पादन और उपभोग के प्रश्नों से जुड़ा एक और भी आधारभूत प्रश्न है :

5. आर्थिक विकास से क्या आशय है और एक अर्थव्यवस्था कैसे अपना विकास करती है ? एक सम्बन्धित प्रश्न है ?

6. वह क्या लागत है जिसे हमें आर्थिक विकास के लिए बर्दाश्त करना है ? दूसरे शब्दों में, कल की सम्पन्नता के लिए लोगों को आज कितना त्याग करना चाहिए ?

प्रथम, हम भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं का समाधान तभी कर सकते हैं जब हम इन प्रश्नों के उत्तरों के साथ-साथ अपनी अर्थव्यवस्था के बारे में भी कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी रखें-जैसे हमारे प्राकृतिक एवं भौतिक संस्थान, जनसंख्या समेत हमारे मानवीय संसाधन, देश में उपलब्ध कौशल तथा हमारी औद्योगिक और कृषि तकनोलॉजी की वर्तमान स्थिति, तथा बैंक, व्यवसायिक उद्यम, फार्म, सरकारी निकायों जैसे संस्थाओं के बारे में जानकारी आदि।

द्वितीय, सभी आधारभूत प्रश्न एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। हम इनमें से किसी भी एक प्रश्न का उत्तर अन्य प्रश्नों के बारे में सोचे बिना नहीं दे सकते। उदाहरण के लिए, किस वस्तु का उत्पादन करना है और जो कुछ उत्पादित किया गया है इसका उपयोग कौन करेगा-ये दो अलग-अलग प्रश्न नहीं हैं। इसी प्रकार, माना कि, जब हम आज अधिक कपड़े का उत्पादन करने की बजाय अधिक मशीनों का उत्पादन करते हैं, तो हम देखते हैं कि इससे कल और अधिक वस्तुएं उत्पादित कर सकने की क्षमता में वृद्धि होती है किन्तु ऐसा आज कुछ वस्तुओं के उपभोग में कमी करके ही हो पाया है। इस प्रकार, ये दो प्रश्न कि "आर्थिक विकास के लिए हमने कितनी लागत को बर्दाश्त करना है" और "आज कौन सी वस्तुओं का उत्पादन किया जाएगा" अलग-थलग और पूर्णतया स्वतन्त्र प्रश्न नहीं हैं।

जब हमें इस बात का अहसास होता है कि उत्पादन और उपभोग से सम्बन्धित ये सब महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न कैसे एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं तभी हम लोगों के समूचे आर्थिक जीवन की जटिलता को समझना प्रारम्भ करते हैं। उत्पादन, उपभोग और आर्थिक विकास की प्रक्रिया कैसे ठीक-ठाक एक दूसरे पर निर्भर है-यह तो अधिक ऊंचे दर्जे के आर्थिक विश्लेषण का विषय है। इस पुस्तक में तो हम भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में इन परस्पर निर्भर आर्थिक प्रक्रियाओं की कुछ मुख्य विशेषताओं का ही वर्णन करेंगे। जब हम इस अध्याय के शेष भाग में उत्पादन, उपभोग और आर्थिक विकास से सम्बन्धित प्रश्नों को थोड़ा अधिक अच्छी प्रकार समझने का प्रयास करेंगे।

अर्थव्यवस्था में तीन प्रकार के उत्पादक होते हैं। प्रथम प्रकार के उत्पादक वे हैं जो खाद्य एवं अन्य फसलों, वन-उत्पादों आदि अर्थात् ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिन्हें प्रकृति के उत्पाद कहा जा सकता है। इन्हें प्राथमिक उत्पादक कहा जाता है। स्पष्ट रूप से, इनकी क्रियाएं ऐतिहासिक दृष्टि से मानव की प्रथम उत्पादक क्रियाएं रही हैं जिनमें कृषि, पशुपालन, मुर्गीपालन, वनोद्योग, पत्थर उत्खनन, खनन आदि क्रियाएं शामिल हैं।

दूसरे प्रकार के उत्पादक वे हैं जो विभिन्न उद्योगों जैसे सूती वस्त्र, इस्पात आदि में बड़े और छोटे पैमाने पर वस्तुओं के निर्माण में लगे हुए हैं। इन्हें द्वितीयक उत्पादक कहा जाता है। प्राथमिक उत्पादकों और इनकी क्रियाओं में मुख्य अन्तर इस बात में निहित है कि ये ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिन्हें मनुष्य-निर्मित कहा जा सकता है-अर्थात् ऐसी वस्तुएं जो प्रकृति में पहले उसी रूप में नहीं पाई जाती थीं।

कृषि जैसे प्राथमिक उत्पादन और विनिर्माण अथवा उद्योग जैसे द्वितीयक उत्पादन के अलावा अर्थव्यवस्था में एक तीसरे प्रकार की उत्पादक क्रिया भी होती है। जैसे-जैसे समाज में प्राथमिक और द्वितीयक उत्पादक क्रियाएं बढ़ती जाती हैं वैसे-वैसे ही लोगों को यह भी लगने लगता है कि अर्थव्यवस्था को ऐसे लोगों की भी ज़रूरत है जो भौतिक वस्तुएं तो प्रदान नहीं करते किन्तु सड़क अथवा जहाज के माध्यम से परिवहन, वस्तुओं के भण्डारण, बैंकिंग और बीमा जैसी सेवाएं प्रदान करते हैं। वास्तव में, आज उत्पादन को केवल वस्तुओं का उत्पादन कहने की बजाय वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन कहना कहीं अधिक सही है अत: जो लोग सेवाएं प्रदान करने के काम में लगे हुए हैं वे तृतीयक उत्पादक हैं।

इन तीन प्रकार की उत्पादक क्रियाओं के अनुसार, अर्थव्यवस्था को तीन भागों अथवा क्षेत्रों में विभाजित करा अक्सर उपयोगी रहता है। इस प्रकार, प्राथमिक क्षेत्र में कृषि जैसी आर्थिक क्रियाएं आती हैं, द्वितीयक क्षेत्र में उद्योग और तृतीयक क्षेत्र में सेवाएं आती हैं।

उत्पादक किसके लिए उत्पादन करता है ?
अथवा उपभोक्ता कौन है ?

इतिहास में प्रथम उत्पादकों ने केवल अपने लिए और अपने परिवारों के लिए ही उत्पादन किया था। जो भोजन वे खाते थे, जो कपड़ा वे पहनते थे और जिन घरों में रहते थे, वे सब ऐसी वस्तुएं थी जिनका उन्होंने अपने स्वयं के प्रयोग के लिए ही उत्पादन किया था। ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करना जो लोगों की आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से पूरा करती है, अर्थशास्त्र में ''उपभोग'' कहलाता है। इस प्रकार प्रारम्भ में उत्पादन उत्पादकों अथवा उनके परिवारों के स्व-उपभोग के लिए ही किया जाता था। किन्तु धीरे-धीरे लोगों को एक दूसरे की वस्तुओं का विनिमय किए जाने के लाभ समझ में आने लगे और प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी उत्पादक क्रियाओं में विशिष्टीकरण करने लगे। इस प्रकार, जुलाहा केवल कपड़े का और किसान केवल धान का उत्पादन करने लगा और वे अपने अतिरिक्त उत्पादनों का विनिमय करने लगे जिससे कि दोनों को ही खाने के लिए चावल और पहनने के लिए कपड़ा मिल सके।

प्रारम्भ में विनिमय केवल वस्तुओं के बीच ही होता है-धान के बदले कपड़ा, बर्तनों के बदले धान, कपड़े के बदले बर्तन आदि आदि। विनिमय की इस प्रक्रिया को वस्तु-विनिमय कहा जाता है। यह तब तक जारी रही जब तक लोगों ने मुद्रा के प्रयोग को न खोज निकाला। जब मुद्रा का प्रयोग होने लग गया तब जुलाहा अपने कपड़े को मुद्रा के बदले बेचकर उस मुद्रा का प्रयोग चावल और बर्तन खरीदने में कर सकता था। यह तरीका उस तरीके से अधिक आसान था जिमसें केवल वस्तुओं के बदले वस्तुओं का ही विनिमय होता था। मुद्रा का प्रयोग होने पर उत्पादकों को विक्रेता और उपभोक्ताओं को क्रेता कहा जाने लगा था। बाज़ार एक ऐसा स्थान बन गया जहां लोग मुद्रा लेकर वस्तुएं खरीदे (वस्तुओं की मांग करने) और अपनी अतिरिक्त वस्तुएं देकर उन्हें मुद्रा के बदले बेचने (वस्तुओं की पूर्ति करने) जाया करते थे।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में उत्पादक वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन

(**अर्थात्** पूर्ति) उन उपभोक्ताओं के लिए करते हैं जो इन उत्पादों के बाज़ार में मांग करते हैं। नि:सन्देह **यहां** यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अपने स्वयं के तथा दूसरे लोगों के द्वारा उत्पन्न वस्तुओं के उपभोक्ता भी होते हैं।

अब यह कहा जा सकता है कि उत्पादक उपभोक्ताओं के लिए उत्पादन करते हैं और आधुनिक युग **में इसका** अर्थ होता है बाज़ार के लिए उत्पादन करना जहां वे अपने उत्पादन मुद्रा के बदले बेच सकते हैं।

क्या और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए ?

जिन तर्कों के आधार पर उत्पादक इस बात का निश्चय करता है कि वह किन वस्तुओं का और कितनी मात्रा में उत्पादन करे, मांग और पूर्ति के तर्क कहलाते हैं।

किसी एक वस्तु के उत्पादन के लिए निश्चित ही, सबसे पहली शर्त है कि उत्पादन-तकनोलॉजी (उत्पादन की वास्तविक प्रक्रिया की जानकारी) आवश्यक कौशल, कच्चा माल, उत्पादन के लिए ज़रूरी उपकरण और भूमि (मौसम की समुचित परिस्थितियों सहित) आदि सब उत्पादक को उपलब्ध हों। जब यह शर्त पूरी हो जाए तो हम यह कह सकते हैं कि वस्तु का उत्पादन सम्भव है। किन्तु उत्पादन की यह सम्भावना ही पर्याप्त नहीं है। ऐसी हरेक वस्तु जिसका उत्पादक उत्पादन कर सकता है, वास्तव में उत्पादन नहीं किया जाता। उत्पादन तो केवल उसी वस्तु का और उसकी उतनी ही मात्रा का उत्पादन करेगा जिसे वह सर्वाधिक लाभदायक पाएगा। यह समझने के लिए कि एक उत्पादक उत्पादन के बारे में कैसे निर्णय करता है, हम एक सरल उदाहरण लेंगे।

माना कि एक किसान के पास एक एकड़ उपजाऊ भूमि है जिसका वह गेहूं अथवा धान (चावल) के उत्पादन के लिए प्रयोग कर सकता है। भूमि पर खेती करने के लिए निश्चित ही उसे कुछ लागत लगानी पड़ेगी और गेहूं व धान की खेती के लिए यह लागत अलग-अलग हो सकती है। हम यहां यह भी मान लेते हैं कि इस भूमि से प्राप्त उपज को यह मानकर बेचता है कि इस उपज में से उसे अपने स्वयं के उपयोग के लिए कुछ नहीं चाहिए। गेहूं अथवा धान से बाज़ार की बिक्री के बदले उसे जो कुछ मिलता है और उसकी जो कुछ उत्पाद लागत आती है-इन दोनों के अन्तर पर निर्भर करेगा।

भूमि के इस टुकड़े पर किसान चाहे गेहूं का उत्पादन करे अथवा धान का, वह उत्पादन-लागत में परिवर्तन करके भी अपनी उपज की मात्रा में कुछ परिवर्तन कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि वह उर्वरकों पर अधिक खर्च करता है तो उसका गेहूं का उत्पादन भी बढ़ जाता है। इस प्रकार जहां एक ओर उसकी उत्पादन की लागत बढ़ जाती है वहां दूसरी ओर उत्पादन का मूल्य (जिसे वह बाज़ार में प्राप्त करता है) भी बढ़ जाता है। स्वाभाविक रूप से ही वह उस लागत का चुनाव करेगा जो भूमि के उस टुकड़े पर उसे गेहूं (अथवा धान) की खेती से अधिकतम लाभ (उत्पादन के मूल्य और उत्पादन की लागत को अन्तर) प्रदान करेगी। नीचे की तालिका-1 बताती है कि यदि एक किसान को किसी एक फसल माना कि गेहूं का उत्पादन करना हो तो वह किस प्रकार अपना चुनाव करेगा।

तालिका-1 से स्पष्ट है कि यदि एक किसान गेहूं की खेती करता है तो वह स्थिति ''ब'' की बजाय स्थिति ''अ'' का ही चुनाव करेगा। अर्थात् वह भूमि के अपने टुकड़े पर 1550 कि०ग्रा० गेहूं का उत्पादन करने के लिए 2500 रु० खर्च करने की बजाय 1500 कि०ग्रा० गेहूं के उत्पादन पर 2000 रु० खर्च करना ही पसन्द करेगा और इस प्रकार 2150 रु० की बजाय, 2500 रु० का लाभ प्राप्त करना चाहेगा।

तालिका-1
कितनी लागत लगानी है और क्या उत्पादन करना है

	जोत का आकार : एक एकड़ भूमि पर गेहूं की खेती स्थिति "अ"	स्थिति "ब"
1. उत्पादन की लागत	2500 रु०	2500 रु०
2. उत्पादन (किलो में)	1500	1550
3. कीमत (प्रति किलो)	3 रु०	3 रु०
4. उत्पादन का मूल्य (2 × 3)	4500 रु०	4650 रु०
5. लाभ (4-1)	2500 रु०	2150 रु०

इस प्रकार एक किसान यह गणना कर लेता है कि गेहूं के उत्पादन अथवा धान के उत्पादन पर आई लागत के सन्दर्भ में उसका सर्वोत्तम उत्पादन क्या होगा। इसी तरह वह यह भी मालूम कर सकता है कि गेहूं का अथवा धान में से किसका उत्पादन करना अधिक लाभदायक होगा। माना कि नीचे दी गई तालिका उत्पादन की सर्वोत्तम परिस्थितियों के अन्तर्गत गेहूं और चावल की लागतों, कीमतों और उत्पादनों को बताती हैं।

तालिका-2
क्या उत्पादन किया जाए का चुनाव

	जोत का आकार : एक एकड़ गेहूं	
1. उत्पादन की लागत	2000 रु०	2500 रु०
2. उत्पादन (किलो में)	1500	1450
3. कीमत (प्रति किलो)	3 रु०	3.50 रु०
4. उत्पादन का मूल्य (2 × 3)	4500 रु०	4900 रु०
5. लाभ (4-1)	2000 रु०	2400 रु०

उपर्युक्त तालिका 2 से स्पष्ट है कि एक एकड़ भूमि पर खेती करने पर हमारे किसान को धान की बजाय गेहूं से अधिक लाभ मिलता है यदि उसके पास अपनी इस भूमि को किसी और अधिक लाभदायक प्रयोग में लगाने का और कोई रास्ता नहीं है तो वह इस भूमि पर 1400 कि०ग्रा० धान का उत्पादन कर 2400 रु० का लाभ कमाने की बजाय 1500 कि०ग्रा० गेहूं का उत्पादन कर 2500 रु० लाभ कमाने को पसन्द करेगा।

संक्षेप में, साधनों की एक निश्चित मात्रा के दिए हुए होने पर, उत्पादन को जिस वस्तु की जितनी मात्रा का उत्पादन करना सर्वाधिक लाभदायक लगेगा वास्तव में वह उसी का उत्पादन करेगा। हमें याद होगा कि उत्पादन का लाभ बाज़ार में उसके उत्पादन को जो कुछ प्राप्त होता है (यह इस वस्तु के लिए उपभोक्ताओं

की मांग पर निर्भर करता है) और उस उत्पादन की पूर्ति के लिए उसकी जो लागत आती है-इन दोनों के अन्तर पर निर्भर करता है। पहली इस बात का सम्बन्ध मांग से है और दूसरी का पूर्ति से है और ये दोनों मिलकर तय करते हैं कि क्या उत्पादन किया जाएगा और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए।

कैसे उत्पादन किया जाए ?

यद्यपि यह माना जाता है कि उत्पादन को उत्पादन की वास्तविक प्रक्रिया का ज्ञान होता है किन्तु सामान्यतया उसे यह तय करना पड़ता है कि उत्पादन के लिए आवश्यक विभिन्न साधनों का संयोग कैसे किया जाये। ऐसा इसलिए है क्योंकि श्रम, उपकरण, उर्वरक आदि साधनों के विभिन्न वैकल्पिक संयोगों का प्रयोग करके उतनी ही मात्रा में उत्पादन करना सम्भव है। माना कि हमारे पिछले उदाहरण के अनुसार ऐसे दो वैकल्पिक संयोग हैं जिनमें से प्रत्येक हमारे किसान के पास उपलब्ध एक एकड़ भूमि पर 1500 कि०ग्रा० गेहूं का उत्पादन कर सकता है। नीचे की तालिका 3 में हम इन दो संयोगों को संयोग ''अ'' और संयोग ''ब'' के नाम से पुकारेंगे। सरलता की दृष्टि से, यहां हम केवल श्रम एवं उपकरणों के प्रयोग में आने वाले परिवर्तनों को ही बताते हैं, यह मानते हुए कि इन दोनों ही संयोगों में अन्य साधन समान ही बने रहते हैं।

तालिका-3
1500 कि०ग्रा० गेहूं का उत्पादन करने के लिए वैकल्पिक साधन-संयोग

	संयोग ''अ''	संयोग ''ब''
1. श्रम	श्रम की 1 इकाई	श्रम की 2 इकाईयां
2. उपकरण	1 बड़ी मशीन	2 छोटे उपकरण

किसान को यह मालूम करना होगा कि इन दोनों संयोगों में से कौन-सा संयोग कम खर्चीला है। उदाहरण के लिए, यदि उसे यह पता चलता है कि श्रम की एक इकाई (किराए के एक श्रमिक) की लागत 500 रु० है, एक बड़ी मशीन की लागत 1000 रु० है और छोटे उपकरणों की लागत प्रति उपकरण 300 रु० है तो उसकी वैकल्पिक उत्पादन-लागत नीचे दी गई तालिका 4 के अनुसार होगी, यह मानते हुए कि दोनों ही स्थितियों में वह अन्य साधनों पर 500 रु० खर्च करता है।

स्पष्ट है कि किसान अपनी एक एकड़ भूमि पर 1500 कि०ग्राम० गेहूं का उत्पादन करने के लिए साधन-संयोग ''ब'' के स्थान पर संयोग ''अ'' का ही चुनाव करेगा। दूसरे शब्दों में, किसान किसी एक विशेष वस्तु के उत्पादन के लिए साधनों के उस संयोग का चुनाव करके जिसकी लागत न्यूनतम आती है इस प्रश्न का उत्तर दे देता है कि ''कैसे उत्पादन किया जाए''।

तालिका-4
वैकल्पिक साधन-संयोगों की लागत

	संयोग ''अ''	संयोग ''ब''
1. श्रम की लागत	500 रु० (1 इकाई)	1000 रु०. 2 (इकाइयां)
2. उपकरण की लागत	1000 रु० (1 बड़ा)	600 रु० (2 छोटे)
3 अन्य साधनों की लागत	500 रु०	500 रु०
योग	2000 रु०	2100 रु०

साधनों का कुशल उपयोग

हमने देखा कि उत्पादक उपलब्ध साधनों के उचित संयोगों का चुनाव करके जिससे कि मांग और पूर्ति की दी हुई परिस्थितियों में उसका लाभ अधिकतम हो सके वह इन प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ हो जाता है कि क्या और कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए और साथ ही कैसे उत्पादन किया जाए। जब उत्पादक को ठीक उसी प्रकार उत्तर मिल जाते हैं जिस प्रकार हमने अपनी पिछली तालिकाओं में बताया है तो हम कह सकते हैं कि साधनों का आर्थिक दृष्टि से कुशलतम उपयोग किया जाए। संक्षेप में, इसका अर्थ है कि साधनों का उपयोग तब कुशलतम होता है जब उत्पादक अधिकतम लाभ कमाता है और इसे उत्पादित वस्तु के प्रकार में परिवर्तन करके, उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन करके अथवा उत्पादन में प्रयुक्त साधनों पर आने वाली लागत में परिवर्तन करके बढ़ाया नहीं जा सकता।

आर्थिक विकास से क्या आशय है ?

प्रत्येक समाज को केवल अपने वर्तमान के बारे में ही विचार नहीं करना होता है बल्कि उसे अपने आपको भविष्य के लिए भी तैयार करना होता है। हम अपने आज के आराम और सुरक्षा के लिए ही सामान नहीं जुटाते बल्कि हम अपने पुत्रों एवं प्रपोत्रों के लिए भी कुछ व्यवस्था करते हैं। मनुष्य के आर्थिक जीवन के अनेक तथ्यों में से एक तथ्य यह है कि कुछ दिए बिना कोई भी चीज प्राप्त नहीं की जा सकती। यदि हम साधनों को किसी एक वस्तु के उत्पादन में लगाते हैं तो हमें निश्चित ही कुछ अन्य वस्तुओं को प्राप्त कर सकने के लाभ से वंचित होना पड़ेगा। हम अपने साधनों को कई वैकल्पिक प्रयोगों में लगा सकते हैं किन्तु किसी एक समय पर उन सब साधनों की कुल मात्रा तो सीमित होती है। इसलिए, इस बात को सुनिश्चित बनाने के लिए आज से बीस वर्षों के बाद हमारा और हमारी संतति का ठीक से भरण-पोषण हो, आज हम जो कुछ उत्पादन करते हैं उसमें से एक भाग को अलग ही रखना होगा अर्थात् समूचे उत्पादन का ही उपयोग नहीं कर लेना होगा।

किन्तु कोई व्यक्ति भविष्य के लिए कैसे ठीक-ठाक से प्रबन्ध कर सकता है ? इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि हमें आज से बीस वर्षों के बाद पर्याप्त कपड़े मिल सकें, हम आज सीधे-सादे कुछ कपड़ों का संग्रह नहीं कर सकते। हमें जो करना है वह आने वाले वर्षों में उत्पादन की क्षमता को बनाए रखना जिससे कि हर वर्ष उत्पादन के स्तर को बनाए रखा जा सके। पूंजी उपकरणों को अक्षत बनाए रखने के लिए, जबकि प्रयोग के कारण इनका मूल्य-ह्रास होता रहता है, हमें कुछ अन्य कामों के लिए उपयोगी साधनों को इन उपकरणों पर खर्च करना पड़ेगा। अतः हर वर्ष अर्थव्यवस्था को अपने साधनों के एक भाग को उपभोग पर नहीं बल्कि अपने पूंजी उपकरणओं को अक्षत बनाए रखने के लिए इनकी मरम्मत और इनके प्रतिस्थापन पर लगाना होगा। यह एक मात्र ऐसा तरीका है जिसके द्वारा वर्षानुवर्ष उत्पादन के स्तर को बनाए रखा जा सकता है। इस प्रकार साधनों के उपभोग की बजाए इनका उपकरणों के लिए प्रयोग करने को ही "निवेश" कहा जाता है।

हमारी जैसी एक विकासशील अर्थव्यवस्था में, उत्पादन को उसके वर्तमान स्तर पर बनाए रखना ही उद्देश्य नहीं होता बल्कि हर वर्ष इसमें वृद्धि करते जाना भी उद्देश्य होता है। इसका कारण यह है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ-साथ प्रति व्यक्ति उत्पादन के वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए भी पूंजी-उपकरणों के स्टॉक में वृद्धि करना आवश्यक होता है। यदि उद्देश्य हर वर्ष प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि करने का है तब तो अर्थव्यवस्था का उपभोग से पूंजी उपकरणों के निर्माण (अर्थात् निवेश) के लिए हर वर्ष और भी अधिक साधनों को हस्तान्तरित करना चाहिए। आर्थिक विकास के अनेक अर्थों में से यह

एक बहुत स्पष्ट अर्थ है। किन्तु आर्थिक विकास का एक अधिक गहरा अर्थ भी है जो तब स्पष्ट होगा जब हम इस बात पर विचार करेंगे कि विकास की इस लागत को लोगों ने कैसे वहन करना है।

आर्थिक विकास की लागत

यह समझना कठिन नहीं है कि हम भविष्य में उपभोग वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता में वृद्धि करने के लिए ही आज मशीनों का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए हमें आज उपभोग का त्याग कर देना चाहिए और तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक मशीनें तैयार नहीं हो जातीं। यदि हम एक कदम और आगे जाएं और आज ऐसी मशीनों का निर्माण करें जो कल दूसरी मशीनों का उत्पादन करेंगी तब तो हमें उपभोग का और अधिक लम्बे समय तक त्याग करना पड़ेगा जिससे कि अन्त में तीव्र आर्थिक विकास के रूप में और अधिक बड़ा प्रतिफल प्राप्त हो सके।

किन्तु, अर्थव्यवस्था का विकास कितनी तेज़ी से होना चाहिए। इस सवाल का कोई सीधा सादा उत्तर नहीं हो सकता। प्रत्येक समाज ने हरेक पीढ़ी में वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं के बीच का निर्णय विकास की उसकी अपनी तीव्रता के आधार पर करना चाहिए।

हमारी अर्थव्यवस्था में इस बारे में पंचवर्षीय योजना के माध्यम से लगातार निर्णय किए जाते रहे हैं। उदाहरण के लिए और अधिक पूंजी उत्पन्न करने में समर्थ पूंजी उपकरणों का उत्पादन करने वाले भारी उद्योगों को हमने जितना अधिक चुना है उतना ही भविष्य के लिए उत्पादन के आधार को अधिक मजबूत बनाया जा सका है। किन्तु इसके साथ ही वर्तमान पीढ़ी को उतना ही अधिक त्याग भी करना पड़ा है। इस बात का हमारे लोगों को श्रेय दिया जाना चाहिए कि भारत में पिछले चालीस वर्षों के दौरान उन्हें वर्तमान उपभोग के त्याग को टालने के आसान तरीके को चुनने का आग्रह नहीं किया है। उन्होंने इस बात को सुनिश्चित बनाया है भावी पीढ़ियों को अर्थव्यवस्था में अधिक मज़बूत पूंजी आधार उपलब्ध हो सके और इसके लिए उन्होंने योजनाओं में उपभोग से निवेश की और काफी बड़ी मात्रा में साधनों को हस्तान्तरित करने की इजाजत दी है।

किन्तु यह सुनिश्चित करने के लिए कि कहीं अर्थव्यवस्था टूट ही न जाए उपभोग में त्याग का भार लोगों के लिए असहनीय नहीं होना चाहिए। जब आर्थिक विकास में सामाजिक न्याय और न्यायोचित वितरण के बारे में ध्यान दिया जाता है तभी अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास के लिए आवश्यक कठोर निर्णय ले पाती है। वस्तुतः सामाजिक न्याय और समुचित वितरण के बिना आर्थिक विकास संवृद्धि सही मायने में आर्थिक विकास ही नहीं है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक विकास की लागत-भावी विकास के लिए वर्तमान उपभोग का त्याग को लोगों द्वारा समान रूप से वहन करना चाहिए जिससे कि सही अर्थों में आर्थिक विकास हो सके।

आर्थिक प्रश्नों के हल-दो तरीके : कीमत यन्त्र और नियोजन

हम पूंजीवादी और समाजवादी-इन दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में अन्तर के बारे में पहले ही चर्चा कर चुके हैं। एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपनी आधारभूत समस्याओं के हल के लिए मुख्य रूप से मांग और पूर्ति की बाज़ार शक्तियों की क्रियाशीलता पर निर्भर करती है। इसके विपरीत, एक समाजवादी अर्थव्यवस्था केन्द्रीय नियोजन पर निर्भर करती है। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में बाज़ार अथवा कीमत यन्त्र और नियोजन तन्त्र दोनों का ही प्रयोग किया जाता है।

कीमत-तन्त्र के अन्तर्गत वस्तु की विभिन्न कीमतों पर लोग जो कुछ मांग करते हैं और उत्पादक जो कुछ आपूर्ति करते हैं उसके आधार पर ही कीमतों का निर्धारण होता है। यदि किसी एक दी हुई कीमत पर बाज़ार में पूर्ति की तुलना में मांग अधिक है तो कीमत को तब तक बढ़ने की स्वतन्त्रता होती है जब

तक कि मांग घटकर और पूर्ति बढ़कर फिर से एक दूसरे के बराबर नहीं हो जाते। जब किसी एक बाज़ार में किसी एक वस्तु की न तो मांग ही और न ही पूर्ति अधिक होती है तब यह कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था में कमोवेश सन्तोषजनक ढंग से क्या उत्पादन किया जाए (और कितनी मात्रा में किया जाए) वाली अपनी आधारभूत समस्या का समाधान कर लिया है। जो लोग कीमत-तन्त्र की कुशलता में पूरे तौर पर विश्वास करते हैं, वे यह मानते हैं कि इस आधारभूत समस्या का समाधान करने पर अपने आप ही सही एवं न्यायोचित वितरण समेत अन्य आधारभूत समस्याओं का भी समाधान हो जाता है।

किन्तु जो लोग नियोजन-तन्त्र की आवश्यकता पर जोर देते हैं वे आधारभूत समस्याओं के समाधान करने में मांग और पूर्ति की शक्तियों तथा कीमत-तन्त्र की अपर्याप्तता की ओर संकेत करते हैं। उनका कहना है कि बाज़ार में काम करने वाली शक्तियों के माध्यम से विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अपने आप आवश्यक रूप से आर्थिक विकास अपनी वांछित गति से आगे नहीं बढ़ पाता और राष्ट्रीय उत्पाद के वितरण में सबको सामाजिक न्याय नहीं मिल पाता। वे इस अपर्याप्तता के लिए मुख्य रूप से तीन कारण बताते हैं।

पहला यह है कि बाज़ार की मांग और पूर्ति की शक्तियां ठीक उसी तरह से तमाम लोगों की आर्थिक आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं जिस तरह से एक प्रजातन्त्र में मतों द्वारा मतदान उनकी राजनैतिक आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करता है। बाज़ार-मांग का झुकाव स्वाभाविक रूप से ही उनकी तरफ होता है जो अधिक खर्च कर सकते हैं। इसीलिए, अर्थव्यवस्था के साधनों पर गरीब आदमियों की अनिवार्यताओं की तुलना में अमीर आदमियों की विलासिताओं का अधिक अधिकार होता है। यही कारण है कि एक सार्वजनिक बस की तुलना में एक प्राइवेट कार का उत्पादन करना अधिक लाभदायक हो सकता है, भले ही बस काफी बड़ी संख्या में लोगों की परिवहन की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती हो। इसी तरह पूर्ति की दृष्टि सभी प्रसाधनों एवं दवाइयों, सिनेमाघरों एवं अस्पतालों, बड़ी शहरी इमारतों एवं ग्रामीण मकानों आदि के बीच साधनों का वितरण प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं के चुनाव को समान रूप से प्रकट नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए, गरीब लोगों की आवश्यकता दवाइयों की हो सकती है, किन्तु अमीर लोग और भी अधिक प्रभावी रूप से प्रसाधनों की मांग कर सकते हैं। गरीब को अस्पताल सेवा की आवश्यकता हो सकती है किन्तु तब भी एक निजी निवेशकर्ता के लिए सिनेमाघर बनाना लाभदायक हो सकता है और इस प्रकार के प्रत्येक मामले में बाज़ार में चुनाव का निर्णय अधिक शक्तिशाली आर्थिक समूहों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली पूर्ति के द्वारा ही होता है क्योंकि बाज़ार के माध्यम से साधनों का आबंटन के लिए मतदान ''एक व्यक्ति एक वोट'' के नियम के अनुसार नहीं होता। इस प्रकार इस तन्त्र का झुकाव अधिक खर्च या अधिक निवेश करने वालों के पक्ष में ही होता है।

बाज़ार-तन्त्र सामाजिक उद्देश्यों को पर्याप्त रूप से पूरा क्यों नहीं कर पाता इसका दूसरा कारण यह है कि बाज़ार शक्तियां केवल उपभोक्ता के स्वहित का ही प्रतिनिधित्व करती हैं जैसे कि उसकी खरीदों से प्रकट होता है। किन्तु वही व्यक्ति यदि उससे पूछा जाए तो वह एक भिन्न सामाजिक हित के बारे में अपनी राय प्रकट कर सकता है। आओ, हम इसका एक सरल उदाहरण लेते हैं। माना कि सरकार को यह सलाह देने के लिए किसी एक वस्तु पर शुल्क की दर क्या होनी चाहिए एक अर्थशास्त्री को एक समिति में बैठना है। ऐसी स्थिति में उसे अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा और केवल अपने ही नहीं बल्कि अन्य लोगों के हित के बारे में भी सोचना होगा। यदि उसे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं पर शुल्क की दरों का निर्धारण करना है तो उसे यह काम निस्सन्देह रूप से किन्हीं सामाजिक आधारों पर ही करना होगा। उदाहरण के लिए, वह केवल इतना ही देखने की कोशिश नहीं करेगा कि वह जिन वस्तुओं को खरीदता है उन पर

शुल्क की दर कम ही रहे। वह इस बात का भी सुझाव दे सकता है कि कुछ ऐसी वस्तुएं जिनकी बाज़ार में काफी ऊंची मांग है (और जिन्हें वह स्वयं भी पसन्द करता है) उनका खरीदना और बेचना अधिक मुश्किल कर दिया जाए, उदाहरण के लिए सिगरेट एक ऐसी ही वस्तु हो सकती है।

संक्षेप में, ऐसे मामलों में हम जो सोचते हैं कि यह किया जाना चाहिए उसका निर्धारण हमारे सामाजिक तर्कों के आधार पर ही होता है। जो हम सोचते हैं कि यह किया जाना चाहिए आवश्यक नहीं कि वह सही हो जो हमें व्यक्तिगत रूप से सर्वाधिक अनुकूल बैठता है। हम तो जहां तक सम्भव होगा वहां तक कम से कम शुल्क की दर का भुगतान करना चाहेंगे। हम यह भी चाहेंगे कि हम जिन वस्तुओं को खरीदते हैं उनकी कीमत कम से कम हो। किन्तु सबके बावजूद हमारे सामाजिक मूल्य काफी कुछ भिन्न हो सकते हैं और वे हमें शुल्क की ऊंची दरों का सुझाव देने को प्रेरित कर सकते हैं।

मांग और पूर्ति की बाजार शक्तियों को अपर्याप्त पाए जाने का तीसरा कारण यह है कि हमारी अर्थव्यवस्था की कुछ आधारभूत संरचनाएं जिन्हें ''आधारिक संरचनाएं'' कहा जाता है अभी भी पिछड़ी हुई अवस्था में ही हैं। बाजार की प्रकृति जैसी है उसके वैसे ही बने रहने पर, केवल मात्र अकेले बाज़ार तन्त्र के माध्यम से इन संरचनाओं का तेजी से निर्माण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, और अधिक सड़कों का निर्माण किए बिना हम अपनी अर्थव्यवस्था का विकास नहीं कर सकते। बड़ी-बड़ी नदी घाटी परियोजनाओं का निर्माण किए बिना हम बाढ़ नियन्त्रण नहीं कर सकते, न ही बड़े स्तर पर पर्याप्त मात्रा में बिजली का उत्पादन कर सकते हैं और न ही हम लाखों हैक्टेयर भूमि की सिंचाई कर सकते हैं। अब एक सड़क को कहां और कैसे बेचा जा सकता है जिससे कि किसी के लिए इसका उत्पादन करना लाभदायक हो सके। एक बड़ी नदी-घाटी परियोजना के लाभों को देखते हुए, हम एक बांध के विचार को कीमत लेकर कैसे किसी निर्माता को बेच सकते हैं ? यदि हम ऐसा नहीं कर सकते तो फिर इस प्रकार की बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के लिए आवश्यक हजारों करोड़ों रुपए निवेश करना कैसे और किसके लिए लाभदायक होगा ?

भारत जैसी एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में सामाजिक एवं आर्थिक आधारिक संरचनाएं निश्चित ही एक बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है। ऐसी अवस्था में हमें सिंचाई, बिजली, परिवहन, संचार तथा अन्य सामाजिक और आर्थिक सेवाओं की संरचाओं के निर्माण पर ही हजारों करोड़ों रुपयों का बड़ा भारी निवेश करना होगा। यहां तर्क यह दिया जाता है कि यदि बाज़ार शक्तियों को उनके अपने ही भरोसे छोड़ दिया जाए तब तो अल्पकाल में हमारी अर्थव्यवस्थाओं में बड़े पैमाने पर इन संरचनाओं का उत्पादन कभी भी पर्याप्त रूप से लाभदायक नहीं बन पाएगा।

इन सब कारणों के आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि एक विकासशील अर्थव्यवस्था को तीव्र आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियोजन-तन्त्र की भी आवश्यकता रहती है। किन्तु लगभग सभी नियोजित अर्थव्यवस्थाओं का यह एक सामान्य अनुभव है कि निजी लाभ के लिए चलाए जाने वाले उद्योगों की तुलना में सरकार द्वारा संचालित सार्वजनिक क्षेत्र बहुत जल्दी ही अकार्यकुशल बन जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सरकार द्वारा चलाए जाने वाले उद्योग मांग के प्रति उतनी शीघ्रता और कुशलता से सचेष्ट नहीं हो पाते जितना कि लाभ भावना पर आधारित उद्योग होते हैं। अत: अब इस बात को तेजी से महसूस किया जा रहा है कि एक देश के सामने उपस्थित आर्थिक प्रश्नों के समाधान की कुंजी कीमत तन्त्र पर भरोसा करने में है किन्तु इसके साथ ही नियोजन के माध्यम से बाज़ार शक्तियों पर नियन्त्रण भी होता रहे। विशेषकर ऐसे मामलों में जब ये शक्तियाँ अपर्याप्त पाई जाती हों जैसा कि हमने पीछे विवेचन किया है।

जैसा कि हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि मिश्रित भारतीय अर्थव्यवस्था में कीमत-तन्त्र और केन्द्रीय नियोजन-तन्त्र दोनों का साथ-साथ प्रयोग करने की कल्पना की गई है। इसी पुस्तक में आगे चलकर हम भारतीय नियोजन के बारे में कुछ चर्चा करेंगे।

अभ्यास-प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था में उत्पादक कौन हैं ?
2. उत्पादक इस बात का निर्णय कैसे करता है कि क्या उत्पादन करना है कितनी मात्रा में करना है ?
3. तालिका 1 के उदाहरण को लीजिए। स्थिति "ब" में, माना कि उत्पादन की लागत को बढ़ाकर 2500 रु० कर देने पर उत्पादन बढ़कर 1700 कि०ग्रा० हो जाता है।
   1. अब किसान "अ" का चुनाव करेगा अथवा "ब" का ?
   2. "ब" में किसान को 500 रु० अधिक खर्च करने पड़ते हैं।
      माना कि उसके पास यह अतिरिक्त मुद्रा नहीं है और उसे यह मुद्रा इस अवधि के लिए 10 प्रतिशत ब्याज दर पर उधार लेनी पड़ती है। अब उसकी कुल लागत (अर्थात् उत्पाद की लागत जमा ब्याज की लागत) क्या होगी ?
   3. अब वह "अ" का चुनाव करेगा अथवा "ब" का ?
   4. क्या आप बता सकते हैं कि जब किसान को यह पता चले कि "अ" और "ब" दोनों ही उसे समान लाभ दे रहे हैं तो ब्याज की दर कितनी ऊंची होनी चाहिए ?
   5. सामान्यतया यह देखा जाता है कि जब अधिक उत्पादन किया जाता है और अधिक बेचा जाता है तो वस्तु की कीमत गिर जाती है। स्थिति "ब" में उत्पादन अधिक होता है। माना कि बाजार में 1700 कि०ग्रा० चावल खरीदा जाता है तो चावल की कीमत घटकर 2 रु० रह जाती है। अब किसान "अ" का चुनाव करेगा अथवा "ब" का ? (इस स्थिति में किसान को उधार नहीं लेना पड़ता है।)
4. तालिका 4 लीजिए। माना कि दो संयोग "अ" और "ब" गेहूं की कुछ थोड़ी भिन्न-भिन्न मात्राओं का उत्पादन करते हैं। जबकि "अ" अभी भी 1500 कि०ग्रा० गेहूं देता है, "ब" 1550 कि०ग्रा० देता है। गेहूं की कीमत 3 रु० प्रति किलो है।
   1. किसान "अ" का चुनाव करेगा अथवा "ब" का ?
   2. माना कि 1500 कि०ग्राम० गेहूं तो 3 रु० प्रति कि० पर बेचा जा सकता है किन्तु जब 1550 कि०ग्रा० गेहूं का उत्पादन किया जाता हो तो उसे 2.80 प्रति किलो पर ही बेचा जा सकता है। अब किसान "अ" का चुनाव करेगा अथवा "ब" का ?
5. आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं ? आर्थिक विकास के लिए हमें कुछ त्याग क्यों करना पड़ता है ?
6. एक देश के लिए आर्थिक प्रश्नों के समाधान के दो मुख्य तरीके हैं क्या आप इन दोनों का नाम बता सकते हैं और इनके बीच अन्तर कर सकते हैं।
7. अध्याय के अन्तिम भाग के सन्दर्भ में पूंजीवादी, समाजवादी और मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में अन्तर बताइए ?

❑❑❑